पाँचवें भूटान नरेश का राज्याभिषेक : धर्मतन्त्र, राजतन्त्र और प्रजातन्त्र की अबूझ पहेली

ए. सी. सिन्हा*

पूर्वी हिमालय में अवस्थित द्रुकपन्थी भूटान विश्व का एकमात्र महायान लामावादी राजतन्त्र है। विगत एक वर्ष से वहाँ राजतन्त्र की स्थापना की शताब्दी मनायी जा रही है, जिसकी परिणति 6 नवम्बर से 17 दिसम्बर, 2008 के बीच राज्याभिषेक में होगी। वांगचुक वंश के पाँचवें नरेश के रूप में युवक राजकुमार खेसार नामग्याल की ताजपोशी उनके पिता और चौथे नरेश जिग्मे सिंग्धे वांगचुक के पदत्याग के बाद किया जाएगा। राज्याभिषेक में आमंत्रित अतिथियों में भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री और काँग्रेस अध्यक्ष सोनिया गाँधी के अतिरिक्त करीब 30 देशों के प्रतिनिधि, राजपरिवार के मित्रगण और अन्य गण्यमान्य व्यक्ति होंगे। आंतरिक प्रजातीय संघर्ष से जूझते भूटान के लिए समारोह एक नया अनुभव होगा।

द्रुकपन्थी धर्मराज

भूटान भारतवर्ष और तिब्बत के सांस्कृतिक सीमा पर अवस्थित है। ईसा से करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व वहाँ भारतीय मूल के राजा राज करते थे। फिर ईसा की आठवीं शताब्दी में महागुरु (गुरुरिम्पोची) पद्मसम्भव का भूटान में अवतरण होता है और तत्कालीन प्रशासकों के बीच शांति स्थापित कर पद्मसम्भव बौद्ध धर्म स्थापित करते हैं। तदुपरांत भूटान अपने दक्षिणी पड़ोसी, लखनावती, कोचबिहार के सम्पर्क में रहता है। इस बीच भूटानी लामा नालन्दा विश्वविद्यालय में पढ़ते रहे। परन्तु कालान्तर में उनका सम्पर्क कमजोर होता गया और तिब्बती लामाओं का आवागमन आरंभ हो गया। सतरहवीं शताब्दी में सिक्किम और भूटान दोनों राज्यों में तिब्बती लामाओं ने केन्द्रीय धर्मतन्त्र की स्थापना की। इस संदर्भ में शाबद्रुंग (धर्मराजा) नगाबांग नामग्याल (1594-1651) की भूमिका मूर्द्धन्य रही।

* प्रोफेसर ए. सी. सिन्हा, पूर्व आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, पूर्व संकायाध्यक्ष पूर्वोत्तर पार्वत्य विश्वविद्यालय, शिलांग–793022। सम्पर्क : डी-7/7331, बसन्त कुंज, नयी दिल्ली–110070।

धर्मराजा द्रुक पन्थ के 18वें राजकुमार *महंथ* (Prince-abbot) थे; द्रुक पन्थ तिब्बती परंपरा में सनातनी माना जाता है; दूसरी तरफ दलाई लामा के केन्द्रीय नेतृत्व में गेलुक्पा ;ळमलसनाचंद्ध पन्थ सुधारवादी कहा जाता है। दोनों पन्थों में द्वन्द्व और संघर्ष इतना बढ़ गया कि द्रुकपन्थी शाबद्रुंग (धर्मराजा) को तिब्बत से भागकर भूटान में शरण लेना पड़ा। फिर भी उनके विरोधी तिब्बत से बार-बार भूटान पर आक्रमण करते रहे। आक्रमणकारियों से निबटने के उद्देश्य से प्रथम धर्मराजा ने विभिन्न पहाड़ियों पर सुरक्षात्मक दुर्ग ;क्वदहेद्ध बनवाये। क्योंकि राजव्यवस्था धर्मतांत्रिक थी, ये दुर्ग शीघ्र ही बौद्ध विहार, प्रशासन केन्द्र, स्थानीय राजस्व केन्द्र, सरकारी खजाने के रूप में उभरे। इस प्रकार भूटान के इतिहास में पुनाखा, पारो, थिम्फू, वांगदी, सिम्तोखा, टोंगसा आदि दुर्गों की भूमिका बढ़ती गयी। चूँकि पढ़े-लिखे भिक्षु इन दुर्गों में निवास कर धर्मग्रंथ का अध्ययन-अध्यापन करते थे, इस कारण इनकी दैनिक जीवन की भाषा—जोंखा, दुर्ग की बोली—कालांतर में भूटान की राष्ट्रभाषा के रूप में अपनायी जा रही है।

प्रथम धर्मराजा ने भूटान को स्थायित्व प्रदान किया और 57 वर्ष की अवस्था में वे समाधिस्थ हो गए। तदुपरांत उनके शिष्यों ने 54 वर्ष तक समाधिस्थ धर्मराजा के नाम पर राजकाज चलाया। इन अन्तरिम वर्षों में समाधि धर्मराजा को भोजन परोसा जाता रहा। उनसे आदेश प्राप्त कर राजकाज चलता रहा। वे, यहाँ तक कि, विशिष्ट आगंतुकों से मिलते भी रहे। कहा जाता था कि धर्मराजा की समाधि नहीं तोड़ी जा सकती और उनके मुख्य शिष्य उनसे सम्पर्क बनाए रहते थे, ताकि राज्य में व्यवस्था बनायी रखी जा सके। इसके बाद राजकुमार-महंथ के स्थान पर अवतारी परम्परा चल पड़ी। यानी धर्मराजा के समाधिस्थ होने पर नवजात शिशुओं में से उनके उतराधिकारी की पहचान विशिष्ट भिक्षु किया करते थे। कई कारणों से अवतारो की पहचान समय पर नहीं हो पाती थी। अकसर कई अवतार असमय ही काल की गाल में धकेल दिए जाते थे। प्रथम धर्मराजा की समाधि भंग होने के समय (1705 से 1931 तक) मात्र 5 सर्वमान्य अवतार हुए, परन्तु राज-काज धर्मराजा के नाम पर ही चलता रहा। समाधिस्थ होने के पहले ही धर्मराजा ने धार्मिक कर्मकाण्डों के लिए 'जे खेंपो' (Je Khenpo) और राज्य के लौकिक प्रशासन के लिए देवदेशी (देवराजा) की व्यवस्था कर डाली थी। आज भी धार्मिक क्रिया-कलाप में जे खेंपो की भूमिका प्रमुख है। 1651 से 1905 तक 55 देवराजा हुए इनमें 13 तो प्रतापी प्रशासक थे, जिन्होंने क्रमशः औसतन 11 वर्ष तक राज्य किया। इनके विपरीत एक दर्जन देवराजा बलपूर्वक पदच्युत किए गए और अन्य आधे दर्जन देवराजाओं को मार डाला गया।

1773 से 1863 तक भुटान में एक प्रकार से अराजकता छायी रही। भूटानी सुरक्षा बल प्रायः अपने दक्षिणी पड़ोसी कूचबिहार के सीमावर्ती क्षेत्रों पर धावा बोलते; पशु, स्त्री, बच्चों और व्यक्तियों को लेकर पहाड़ी दर्राओं में छिप जाते। इस प्रकार

भूटान के दक्षिणी सीमा से सटे 18 द्वार (ये राजस्व देनेवाली इकाइयाँ थीं, जो भूटान और कूचविहार दोनों को कर प्रदान करती थीं और दोनों से सतायी जाती थीं।) को लेकर भूटान और भारत की प्रशासक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच लम्बा विवाद चला। भूटान की धर्मतांत्रिक व्यवस्था में धर्मराजा और देवराजा के बीच प्रशासकीय सीमाओं के अभाव में अँग्रेजी सरकार उलझन में पड़ जाती थी कि किस सार्वभौम अधिकारी से निबटें। तंग आकर 1863 में एग्ले ईडन को दूत बनाकर अँग्रेज़ों ने भूटान में प्राय बलपूर्वक एक दल भेजा। भूटानी अधिकारियों ने एग्ले ईडन मिशन को काफी बेइज्जत किया और उससे बलपूर्वक एक असमान सन्धि पर हस्ताक्षर करवाया। मिशन की वापसी की राह में पर्याप्त रुकावटें डाली गयीं। फलस्वरूप 1864 में अँग्रेजों ने भूटान पर धावा बोल दिया। इस बार भूटान पूरी तरह परास्त हो गया और सिंचुला की सन्धि के अनुसार उसकी सीमा तय कर दी गयी। उसे पश्चिम में कलिम्पोंग और दक्षिण के 18 द्वारों से हाथ धोना पड़ा।

राजतन्त्र की स्थापना और अँग्रेजी कूटनीति की विजय

सिंचुला की सन्धि (1865) से क़रीब चार दशकों तक भूटान प्रायः पुराने ढर्रे पर ही चलता रहा। परन्तु गाहे-बगाहे अपने दक्षिणी पड़ोसी की तरफ झाँक लेता था। उन्नीसवीं सदी के अन्त तक तत्कालीन धर्मराजा और देवराजा की मृत्यु क्रमशः 1901 और 1903 में हो गयी। फलस्वरूप क्षीण व्यक्तित्व के तात्कालिक *जे खेंपो* ने दोनों पदों का कार्यभार सम्भाला। परन्तु राज्य का प्रशासन प्रभावी रूप से टोंगूसा के राज्यपाल उगेन वांगचूक, के हाथ में रहा। यह वह समय था, जब भारत के ब्रिटिश वाइसराय, नाथाइल कर्जन, ने कर्नल यंगहस्बेंड के नेतृत्व में तिब्बत पर हमला किया। तिब्बत एक्सपेडिशन (Tibet Expedition, 1903-04) को सफल बनाने में भूटान के तत्कालीन राज्यपाल, टोंगसा पेनलप उगेन वांगचुक (b-1861; r-1907-1926) ने अँग्रेजी सेना के साथ तिब्बत की राजधानी ल्हासा की सफर की ओर अँग्रेजी पक्ष को परास्त तिब्बत के अधिकारियों के सामने प्रभावकारी रूप से रखा। भूटान की धर्मतन्त्रीय व्यवस्थाओं में व्याप्त अराजकता और अव्यवस्था से परेशान अँग्रेजों ने उगेन वांगचुक के रूप में एक चरित्रवान और प्रभावी नेता पाया। उस पर से अपने पूर्वजों के विपरीत उगेन वांगचुक अँग्रेजों का कृपापात्र बनने को तत्पर था। अँग्रेजों ने शीघ्र ही गांत्तोक (सिक्किम) स्थित अपने अँग्रेज पालिटिकल ऑफिसर जे. सी. ह्वाइट को भूटान भेज उगेन वांगचुक को Knight Commander of British Indian Empire (K C I B) से 1905 में अलंकृत किया। स्मरणीय है कि सिक्किम नरेश थुटुब नामग्याल, अपनी तिब्बत परक नीतियों के चलते अँग्रेजों की नजरबन्दी में तब दार्जीलिंग में दिन काट रहा था; ऐसी स्थिति में अँग्रेज एक विश्वस्त मोहरे की तलाश में थे और उगेन वांगचुक उस पर पहल करने के लिए तत्पर थे।

बीसवीं शदी के प्रथम दशक आते-आते पूरे भूटान पर उगेन वांगचुक की तूती बोल रही थी। प्रसिद्ध विहारों के भिक्षुक और महंथ या तो समाधिस्थ थे या धर्मशास्त्रार्थ में व्यस्त थे, प्रतिद्वन्द्वी क्षेत्रीय राज्यपाल निरस्त कर दिए गए। कुछ ऐसा कुचक्र चला कि भूतपूर्व धर्मराजा का सर्वमान्य अवतार नहीं चुना जा सका और देवराजा के स्थान पर नये देवराजा का चुनाव भी नहीं हो पाया। ऐसी स्थिति में भूटान का प्रशासन पूरी तरह टोंगसा राज्यपाल उगेन वांगचुक के हाथ आ गया। दिसम्बर 17, 1907 को पुनाखा के दुर्ग में भूटान परिषद की सभा हुई। उसमें सभी सभासदों ने एकमत से 45 वर्षीय टोंगसा राज्यपाल उगेन वांगचुक को भूटान का महाराजा चुना और उनके और उनके उत्तराधिकारियों के प्रति कृतज्ञ रहने की प्रतिबद्धता दिखाई। भूटान नरेश को देवराजा के क्रम में प्रशासक तय किया गया। धर्मराजा के अवतार के अभाव में उनकी पूजा-अर्चना का कार्य जेखेंपो को सौंप दिया गया। ब्रिटिश उपनिवेशवादी भारतीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप में इस अवसर पर सिक्किम स्थित अँग्रेजी पालिटिकल ऑफिसर ज़ान क्लाइड ह्वाइट ने वाइसराय की तरफ से बधाई दी। शीघ्र ही जनवरी 1910 में भूटान और अँग्रेज़ी भारत के बीच सन्धि हुई और भूटान नरेश स्वेच्छा से स्वछन्द रूप में कहता है कि भूटान अँग्रेजी साम्राज्य का अंग बन गया है, और उसने दिल्ली दरबार (1911) में सिक्किमी राजकुमार के साथ भाग लिया। सिक्किम स्थित पालिटिकल ऑफिसर को भूटान के प्रशासन की देख-रेख की जिम्मेवारी सौंपी गयी। फलस्वरूप 1911 से 1946 तक गांत्तोक स्थित पालिटिकल ऑफिसर प्रति वर्ष अपना प्रतिवेदन केन्द्रीय सरकार को भेजते रहे। यही नहीं, भूटान के महाराजा और अँग्रेजी सरकार ने भूटान को भारतीय साम्राज्य के अधीन एक देशी राज्य माना और महाराजा भारत के अन्य भागों की यात्रा करते रहे और उसने हिन्दी भाषा के माध्यम से आधुनिक शिक्षा की शुरुआत 1914 में की।

धर्मराजा का असंतोष, दुखद मृत्यु और राजनैतिक प्रकरण

परंपरागत समाज में प्राचीन परिपाटियाँ एकाएक समाप्त नहीं हो जातीं। ऊपर कहा गया है तत्कालीन धर्मराजा के 1901 में समाधिस्थ होने के उपरान्त उनका अवतार नहीं पाया गया। परन्तु यह वाक्य अर्द्ध सत्य है। बात यों हुई कि आधुनिक अरुणाचल प्रदेश के तवांग क्षेत्र में जिग्मे दोजी नामक बालक का जन्म एक प्रतिष्ठित कुल में 1905 में हुआ। विधिवत् पहचान के उपरान्त धर्मराजा के इस नये अवतार को उनकी माता और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ 'तालो' विहार में लाया गया और उनकी विधिवत शिक्षा और पालन-पोषण आरम्भ हुआ। स्मरणीय रहे कि द्वितीय वांगचुक नरेश जिग्मे वांगचुक का जन्म भी 1905 में ही हुआ था। धर्मराजा की उपस्थिति राजपरिवार को प्रायः खटकती रही। परन्तु जनाक्रोश के भय से महाराजा धर्मराजा की उपेक्षा भी नहीं कर सकते थे। भूटान की यात्रा पर गए अंग्रेज आगंतुक

प्रायः धर्मराजा से मिलते रहे और अपने प्रतिवेदनों में उनका जिक्र करते रहे। यहाँ तक कि दूसरे भूटान नरेश जिग्मी वांगचुक (1905-1952) के पदग्रहण समारोह में (1926) धर्मराजा की मुख्य भूमिका थी। कहते हैं कि धर्मराजा की माँ दबंग व्यक्तित्व की महिला थीं और उनकी मान्यता थी कि धर्मराजा ही भूटान का वास्तविक राज्याध्यक्ष है और वांगचुक नरेश ने अंग्रेजों की सहायता से भूटान को हड़प लिया है। धर्मराजा के अधिकार को प्रकट करते हुए उनकी माँ ने कुछ तवांगी चरवाहों को भूटान के पूर्वोत्तर सीमांत पर पट्टे भी जारी कर दिए। स्पष्ट है कि पता चलने पर महाराजा ने उन्हें निरस्त कर दिया। परन्तु धर्मराजा और महाराजा के सम्बन्धों में कटुता आ गयी, जो कालान्तर में बढ़ती ही गयी।

इस बीच भारतीय समाचार पत्रों ने मई 1931 में छापा कि तथाकथित 'भूटान नरेश' के एक भाई ने महत्मा गाँधी से गुजरात के बोरशाद स्थान पर मुलाकात की और भूटान को अंग्रेजों तथा उसके 'नकली' नरेश से मुक्त कराने की अपील की। तथाकथित दूत ने महात्मा गाँधी को 16 प्रकार के उपहार दिए और कहा कि महात्मा और धर्मात्मा (धर्मराजा) अंग्रेजों के विरुद्ध साथ हों और इस संदर्भ में भूटान के धर्मराजा भविष्य में महात्मा गाँधी से मिलेंगे। इस सूचना के बाद अंग्रेजों और भूटान नरेश—दोनों के—होश उड़ गए। छानबीन शुरू हुई; कुछ पड़ताल के बाद पाया गया कि धर्मराजा का भाई—चोक्सी ग्लात्सेन—एक सेवक के साथ गाँधी से मिला था। बात यों हुई कि बारशाद में मिलने के बाद महात्मा गाँधी ने चोकसी को उसके भाई और तत्कालीन धर्मराजा के नाम हिन्दी में एक पत्र दिया। चूँकि धर्मराजा हिन्दी से अनभिज्ञ थे, फलस्वरूप हिन्दी पत्र का तिब्बती भाषा में अनुवाद कलकत्ते के किसी 'बाबू' से कराया गया। 'बाबू' के पेट में बात पची नहीं और बात उजागर हो गयी।

फिर क्या था? अँग्रेजी अधिकारी और भूटान नरेश ने दमन का रास्ता अपनाया। धर्मराजा को कैद कर तालो विहार में बन्द कर दिया गया। धर्मराजा के भाई और उसके सेवक से महाराजा ने स्वयम् जानकारी प्राप्त की। शीघ्र ही इन दोनों ने विष खाकर आत्महत्या कर ली। धर्मराजा के परिवार और सम्बंधियों को तरह-तरह से सताया गया। अँग्रेजों की सलाह पर भूटान की उत्तरी सीमा पर 'फौजी' पहरा बिठा दिया गया। कहानी का पटाक्षेप करने के लिए 12 नवम्बर, 1931 को धर्मराजा को प्रताड़ित करने के बाद भोजन में विष देकर मार डाला गया। अँग्रेजों और भूटान नरेश ने समझा चलो समस्या का समाधान हो गया। परन्तु कहानी यहीं खत्म नहीं होती है। दलाईलामा के मन्त्रिपरिषद् ने महाराजा को एक 'तथाकथित तिब्बती लामा' (धर्मराजा तावांग में पैदा हुए थे, जिसे तिब्बत अपना मानता था) की हत्या करने के अपराध के लिए प्रताड़ित किया और धमकी दी कि क्यों नहीं ऐसे अधार्मिक कृत्य के लिए महाराजा को दण्ड दिया जाए। घबराए महाराजा ने अँग्रेजों की सलाह माँगी। अगले वर्ष जुलाई में तत्कालीन पालिटिकल ऑफिसर कर्नल वेयर ने तिब्बती राजधानी ल्हासा

की यात्रा की और दलाईलामा को आश्वस्त किया कि मृत धर्मराजा की मृत्यु सामान्य स्थिति में हुई थी और वे वास्तव में भूटानी नागरिक थे। यह प्रकरण एक अँग्रेजी कूटनीति का शर्मनाक उदाहरण पेश करता है। झुँझलाये महाराजा ने अपने अँग्रेज आकाओं को सलाह दी कि महात्मा गाँधी से बात करने के बदले उन्हें फाँसी दे देना चाहिए। इसके बाद से भूटान नरेश भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन से विद्वेष करने लगे।

इधर भारतवर्ष में अँग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष बढ़ता जा रहा था। ऐसा वातावरण बन रहा था कि अँग्रेजों को देर-सवेर भारत छोड़ना ही था। ऐसी स्थिति में अँग्रेज भक्त अन्य देशी रजवाड़ों की तरह जिग्मी वाँगचुक, द्वितीय भूटान नरेश भी चिंतित थे। अँग्रेज पलिटिकल ऑफीसर की राह पर सिक्किम नरेश के समान भूटान ने भी अपने माँग पत्र के साथ एक प्रतिनिधि मण्डल कैबिनेट मिशन से मिलने 1946 में दिल्ली भेजा। भूटान की मुख्य माँगें थीं : भूटान का ब्रिटिश छत्रछाया में बना रहना। द्वार क्षेत्रीय पहाड़ी और जंगली भागों का भूटान में विलयन और अनवरत वित्तीय सहायता। भूटानी शिष्ट मण्डल कैबिनेट मिशन से तो न मिल सका। उसे सलाह दी गयी कि वापस जाकर अँग्रेजी न्याय की प्रतीक्षा करे। अन्त में भूटान को सलाह दी गयी कि अँग्रेज किसी भी प्रकार की सुरक्षा देने में असमर्थ हैं; क्षेत्रीय सीमाएँ नहीं बदली जा सकतीं और अँग्रेजों के वापसी के पश्चात भूटान को अन्त में नयी उभरती भारतीय सरकार से नये सम्बन्ध बनाने पड़ेंगे। इसी प्रकार अँग्रेजी सरकार ने भारतीय संघ को भी सलाह दी कि भूटान को भारत में विलय करने के स्थान पर उसे एक अलग परन्तु आश्रित राज्य बनाना श्रेयकर होगा। स्मरणीय है कि भूटान के दक्षिण-पश्चिमी भाग में नेपाली मूल की जनजातियाँ रहा करती थीं। सिन्चुला सन्धि के उपरान्त भूटान का सम्पर्क भारत स्थित ब्रिटिश अफसरशाही से बढ़ता गया। 19वीं सदी के अंतिम दशकों में अँग्रेजों ने हिमालय के सम्बन्ध में आक्रामक नीति—Forward Policy to the Himalayas—अपनाई। इस नीति में नेपाली फौजियों, श्रमिकों और कृषकों को अँग्रेजों ने अपने ढाल के रूप प्रयुक्त किया। फलतः भूटान का दक्षिण-पश्चिमी भाग नेपाली कृषकों की सघन आबादी में बदल गया। स्मरणीय है कि ये नेपाली कृषक भूटान के द्रुकपा खेतिहरों के विपरीत ज़मीन की मालगुजारी मुद्रा में जमा करते थे। व्यापार, विनिमय पद्धति पर आधारित भूटान की कमजोर अर्थव्यवस्था के लिए नेपाली कृषकों से प्राप्त राजस्व भूटान के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। कालान्तर में इसी क्षेत्र से विकास कार्यों के लिए मजदूर, औद्योगिक श्रमिक, निर्यात के लिए मौद्रिक उपज (cash crops) और आयातित दैनिक खपत की वस्तुओं के बाजार प्राप्त हुए। परन्तु इसी क्षेत्र से राजनैतिक सुगबुगाहट भी आरम्भ हुई।

भारतवर्ष में व्याप्त स्वाधीनता आंदोलन 1940 के दशक में हिमालयी रजवाड़ों तक जा पहुँचा। यह गैर बात है कि राजनैतिक आंदोलन के समर्थन के लिए आवश्यक नागरीय और औद्योगिक केन्द्रों के अभाव में पूर्वी हिमालयी रजवाड़ों में जनतांत्रिक

पहल सफल नहीं हो पायी। फिर भी प्रयास किए गए और कालान्तर में इन प्रयासों से सबक भी सीखे गए। दिल बहादुर गुरूंग, दिल बहादुर क्षत्री, जी. पी. शर्मा आदि के प्रयास से 56 वर्ष पूर्व 1952 में भूटान राज्य काँग्रेस की स्थापना की गयी। नेपाली काँग्रेस और सिक्किम राज्य काँग्रेस की तरह भूटान राज्य काँग्रेस ने अपना माँग पत्र तैयार किया। भूटान काँग्रेस की मुख्य माँगें थी : सामन्ततन्त्र का उन्मूलन, प्रशासन का जनतान्त्रिकरण, नागरिक और राजनैतिक अधिकारों की बहाली और भारतीय संघ से निकटता की नीति। शिक्षा, संचार, और प्रभावी प्रशासन के अभाव में उपरोक्त माँगें भूटानी प्रजा की समझ से परे की बात थी। भूटान काँग्रेस का प्रभाव दक्षिणी भूटान के नेपालियों तक ही सीमित रहा। चूँकि भूटान काँग्रेस के पदाधिकारी भारत और नेपाल आते-जाते रहे। फलस्वरूप नेपाली प्रशासकों ने भूटान काँग्रेस को प्रवासी नेपालियों की शैतानी की संज्ञा दे डाली। भूटान काँग्रेस ने 22 मार्च 1954 को अपने सत्याग्रह के क्रम में गेलुग्फू स्थान पर धरना दिया। प्रशासन ने उन्हें ऐसा करने से मना किया। सत्याग्रहियों के नहीं मानने पर स्थानीय प्रशासन के संगठित सुरक्षाबल ने उनपर आक्रमण किया और कुछ सत्याग्रहियों को पकड़कर कैद भी कर लिया गया। हिमालयी रजवाड़ों और भारतीय संघ के इतिहास की यह एक अनिर्णय की घड़ी है, जब सामान्य जनता कंधे से कंधा मिलाकर नये भविष्य का निर्माण करना चाहती थी; परन्तु राजनेता इतिहास को पीछे ढकेलने में लगे रहे। फलस्वरूप भूटान कांग्रेस के निर्वासित नेता राजनैतिक प्रस्ताव ही पास करते रहे।

संयोजित विकास, असुरक्षा और ल्हात्शामा पलायन

द्वितीय भूटान नरेश, जो वर्षों से भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन से द्वेष रखता था, अंग्रेजी साम्राज्य का अन्त आता देख चिंतित हो उठा। अंग्रेजी अफसरों की सलाह पर उसने कैबिनेट मिशन से मिलने के लिए अपनी मांगों की सूची के साथ एक प्रतिनिधि मंडल दिल्ली (1946) में भेजा। भूटान और सिक्किम के प्रतिनिधियों को सलाह दी गई कि वे अंग्रेजों से कोई अपेक्षा न करें; नयी भारतीय सरकार से अपने सम्बन्धों की समीक्षा करें और भारत सरकार को सलाह दी गई कि वह रजवाड़ों के साथ के संबंधों में आमूल परिवर्तन न करे। यह एक ऐसा ऐतिहासिक मोड़ था, जब केवल चीन ने बलपूर्वक तिब्बत को हड़प लिया; नेपाल नरेश अपने ही सभासदों के विरुद्ध भागकर दिल्ली के शरणागत हुए; सिक्किम और भूटान तथास्थिति बनाए रखने के लिए भारत से संधि करते हैं। एक तरफ भारतीय संघ के कर्णधार अपनी नयी आजादी को सम्भालने में व्यस्त थे, तो दूसरी तरफ हिमालयी जनता सामन्ती अंधकार को सहन करने को तैयार नहीं थी और जनतंत्र की राह पर चलने को उद्धत थी। परन्तु ध्यान देने की बात है कि शिक्षा, स्वास्थ्य, छापाखाना और समाचार पत्र एवं आवागमन के साधनों के अभाव में भूटानी जनता जंगल-पहाड़ों में बन्दप्राय पड़ी थी।

इस आत्मघाती 'एकला चले' की नीति से बाहर लाने के लिए भारतीय प्रधानमंत्री ने 1958 में पहल की। सड़कों के अभाव में बरास्ते सिक्कम और तिब्बत पंडित नेहरू भूटान घोड़ों पर चढ़कर पहुंचे। उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य और आवागमन के विकास के लिए भूटान को सहायता देने की कोशिश की। इन योजनाबद्ध विकास कार्यों के लिए सक्षम और सस्ते श्रमिकों की आवश्यकता थी, जिसकी भरपाई पीढ़ियों से उपेक्षित नेपाली मूल के भूटानी श्रमिकों ने की। भूटान नरेश ने इन नेपाली मूल की प्रजा को 1958 से नागरिकता प्रदान की। यही नहीं, उन्हें एक नयी पहचान भी दी—दक्षिणी प्रान्तों के निवासी—लत्शाम्पा (Lhotshampas)। राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्धों के लिए भूटान सरकार पांच हजार और बाद में 10 हजार रुपये की पारितोषिक देती रही। 1960 से आरम्भ कर अगले 25 वर्ष द्रुकपा और ल्हात्शाम्पा सम्बन्धों को स्वर्णिम युग कहा। परन्तु 1985 आते-आते स्थिति बदलने लगी।

आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास के क्रम में बेगारी की समस्या उठ खड़ी हुई। वहाँ विदेशों से विशेष शिक्षा प्राप्त कर भूटानी आते रहे। द्रुकपा मूल के लोगों के अहं को चोट लगने लगी कि धर्मराजा शबद्रंग के राज्य में उन्हें तरजीह न देकर गैर-बौद्ध ल्हात्शाम्पाओं को नौकरी दी जा रही है। फिर क्या था? सरकार के कुछ प्रभावशाली प्रशासकों की शह पर अफवाह फैलाई गई कि शिक्षित ल्हात्शाम्पा विदेशी नेपालियों की सहायता से भूटान का नेपालीकरण करना चाहते हैं। फिर पुलिस प्रशासन और प्रभावशाली सामंत सभी एक तरह से संशय का वातावरण बनाने में लग गए। नेपाली मूल के किसानों की जमीन, जायदाद, पशु आदि जब्त किए जाने लगे। उनकी स्त्रियों को बेइज्जत किया जाने लगा। बच्चों का स्कूल का दाखिला रोक दिया गया। नेपाली और संस्कृत भाषा की पढ़ाई बन्द कर दी गई। यहाँ तक कि पीले गेंदे का फूल, जिसे देवताओं पर चढ़ाया जाता है, रोपने पर पाबन्दी लगा दी गयी। विवाहित नारियों को आदेश दिया गया कि वे द्रुकपा नारियों के समान अपने बाल कटवायें। सिन्दूर लगाने पर पाबन्दी लगा दी गयी। घर, गाँव, बखार जला दिए गए। शिकायत करने पर पुलिस नेपाली मूल के नागरिकों को प्रताड़ित करती रही। पुलिस और दुकपा गुण्डों से डरकर लोग जंगलों में भाग गए। यहाँ तक कि सरकार ने अपनी राष्ट्रीयता के प्रमाण-पत्र को मानने से इनकार कर दिया और उन्हें नकली करार देकर शिकायत कर्त्ताओं को या तो जेल में डाल दिया या जलावतन करने के लिए मजबूर किया। जब 1990 में भयग्रस्त जनता ने विरोध में धरना देने का प्रयास किया तो उन पर गोलियाँ चलाई गईं।

ऐसी स्थिति में बड़े पैमाने पर नेपाली मूल के भूटानियों का भूटान से पलायन आरम्भ हुआ। भारत और भूटान के बीच खुले सरहद का फायदा उठाकर ल्हात्शाम्पा भारत या नेपाल में अपने सम्बन्धियों, मित्रों या हमदर्दों के पास चले गए। प्रजातीय

संघर्ष को रोकने के उद्देश्य से भारत सरकार ने भूटान से निर्वासित लोगों को अपनी ज़मीन पर शिविर बनाने की मनाही कर दी। ये सताये हुए शरणार्थी खुली सीमा का लाभ उठाकर नेपाल चले गए। नेपाल सरकार ने अपने यहाँ आठ शिविरों में शरणार्थियों को संयुक्त राष्ट्र की शरणार्थी आयोग (UNHCR) के संरक्षण में रखा। शरणार्थियों में तरह-तरह के सताये नर-नारी, भूतपूर्व सरकारी अधिकारी, शिक्षक-विद्यार्थी, विधायक, कृषक, मजदूर यहाँ तक कि भूटान के केन्द्रीय सलाहकार परिषद के सदस्य तक शामिल थे। शरणार्थी पहले तो इक्के-दुक्के आते रहे; फिर इनकी संख्या बढ़ने लगी। एक ऐसी भी स्थिति आयी कि वे किराये की बसों या ट्रकों में आने लगे। 1991 के अन्त तक आठ शिविरों में शरणार्थियों की संख्या बढ़कर 75,000 हो गयी। भूटानी शरणार्थियों की समस्या अब स्थानीय न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय बन गयी। नेपाली और भूटानी सरकारी प्रतिनिधि पंद्रहों बार मिले। पर शरणार्थी पिछले 18 वर्ष से शिविरों में हैं। अब उनकी संख्या बढ़कर 1,25,000 से ऊपर हो गयी है। दक्षिणी भूटान में अभी भी पर्याप्त ल्होत्शाम्पा रह गए हैं। परन्तु उनको द्रुक संस्कृति में आत्मसात करने के प्रयास तेज कर दिए गये हैं। विरोध करने पर उन्हें शरणार्थियों का समर्थक बताकर सताया जाता है। उनकी नागरिकता और अचल सम्पत्ति जब्त कर ली जाती है। उन्हें सरकारी पदों से निकाल दिया जाता है। उनके बच्चों को स्कूलों में दाखिला नहीं मिलता। लाचार वे देश छोड़ने को मजबूर हो जाते हैं। शरणार्थियों की समस्या पर भूटान की अन्य देशों में भर्त्सना भी हुई। परन्तु भूटान का मानना है कि उसे अपनी संस्कृति की रक्षा करने का अपने देश में पूरा अधिकार है भले ही उससे मानव अधिकारों का हनन होता हो। दुनिया के प्रभावशाली राष्ट्र, भारत संघ सहित, मौन हो भूटान का समर्थन कर रहे हैं। शरणार्थियों का शरणदाता—नेपाल—खुद अपनी अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। फिर कौन शरणार्थियों की सुने? इस बीच निष्क्रिय शरणार्थी अतिवादी संगठनों से जुड़ते जा रहे हैं। जनतान्त्रिक विधि को असफल होते देख उन्होंने हथियार उठाना आरम्भ कर दिया है। गाहे-ब-गाहे आतंकवादी हमलों की सूचना भूटान सरकार देती रहती है। ऊपर से तुर्रा यह कि अन्य संगठनों के अलावा इन्होंने भूटान कम्युनिस्ट पार्टी (B C P) भी बना रखी है। अन्तिम समाचार यह है कि अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि पश्चिमी देश अधिकतर शरणार्थियों को अपने यहाँ अस्थायी रूप से बसाने पर राजी हो गए हैं। भूटान खुशी-खुशी और नेपाल लाचारी में इस पहल से सहमत हैं। परन्तु शत प्रतिशत ग्रामीण कृषक शरणार्थी एकमात्र भूटान जाने की जिद पर अड़े हुए हैं।

प्रजातन्त्र की पहल, संविधान, चुनाव और राज्याभिषेक

नेपाली मूल के ल्होत्शाम्पाओं ने लिखित संविधान, संवैधानिक राजतन्त्र, संविधान प्रदत्त मूलभूत नागरिक अधिकार, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, नियमित चुनाव

तथा संसद नियन्त्रित मन्त्रिपरिषद् की माँग प्रजातीय संघर्ष के साथ कर दी थी। परन्तु उन माँगों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। सरकार की पूरी शक्ति ल्हात्शाम्पा पलायन के उपरान्त हुई आर्थिक क्षति को सँभालने और विश्व जनमत को आश्वस्त करने में भी लगी हुई थी कि वास्तव में नेपाली मूल के भूटानी सरकार हड़पना चाहते थे। और ऐसा भूटान सरकार की तथाकथित नेकनीयती के विरुद्ध हो रहा था। भूटान सरकार की कूटनीति और भारत सरकार के पुरजोर समर्थन के चलते बीसवीं सदी के अन्त तक विश्व जनमत भूटानी शरणार्थी समस्या से थक सा गया था। चौथे भूटान नरेश, जिग्मे सिंघे वांगचुक, ने अपनी जनता को वचन दिया था कि अगर उन्होंने प्रजातीय संघर्ष का समाधान नहीं किया, तो सिंहासन त्याग देंगे। 1998 में उन्होंने प्रशासन की अध्यक्षता सीमित रूप से चुने गये मंत्रिपरिषद के पक्ष में त्याग दी। शीघ्र ही उन्होंने हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में 40 सदस्यीय सभासदों की संविधान नियामक समिति का गठन किया। समिति से कहा गया कि वह एक सरल, संक्षिप्त और संपूर्ण संविधान का प्रारूप पेश करे। 2002 के अंत तक समिति ने अपना काम पूरा किया। भूटान नरेश ने आदेश दिया कि संविधान के प्रारूप पर सभी 20 जनपद विकास परिषदें विचार करें। तदुपरांत नरेश और राजकुमार ने सभी जनपदों की यात्रा की; जनसभाओं में संविधान के प्रारूप को पेश किया; जनता के विचार सुने और बहस के बाद जनता के विचारों को प्रारूप में समावेश किया गया। तदुपरान्त प्रस्तावित संवैधानिक प्रारूप को सांगदू (देश की तत्कालीन संसद) में उसके विचार के लिए पेश किया गया। लम्बी बहस के बाद सांगदू ने संविधान की मंजूरी दी।

संविधान के अनुसार भूटान में वयस्क मताधिकार पर निर्वाचित द्विकक्षीय (Bicameral) संसद होगी, जिसमें 25 सदस्यीय राष्ट्रीय राज्य परिषद (National Council) और 47 सदस्यीय राष्ट्रीय विधान सभा (National Assembly) होगी। फिलहाल दो ही राजनैतिक दल विधिवत परिसूचित होंगे, जिनके उम्मीदवार चुनाव लड़ पाएँगे। एक सक्षम चुनाव आयोग की व्यवस्था की गयी है, जो कि चुनाव की निगरानी करेगा। चुने हुए सभासदों की सभा के बहुमत का नेता देश का प्रधानमन्त्री होगा, जो भूटानी सरकार का प्रमुख होगा। भूटान नरेश यथावत राष्ट्राध्यक्ष बने रहेंगे। इधर संसद ने संविधान की मंजूरी दी, उधर चौथे भूटान नरेश ने महाराजकुमार के पक्ष में पदत्याग की घोषणा कर डाली। महाराजकुमार खेसार जिग्मे वांगचुक का तत्काल राज्याभिषेक नहीं किया जा सकता था, क्योंकि सरकारी ज्योतिषियों ने बताया था कि ऐसी शुभ घड़ी 6 नवम्बर, 2008 को पड़ेगी। इसी ऊहापोह में वांगचुक वंश के सिंहासनारोहण की शताब्दी भी आ धमकी। फलस्वरूप 17 दिसम्बर 2007 से 17 दिसम्बर 2008 तक सिंहासनारोहण समारोह वर्ष मनाया गया, जिसकी परिणति पंचम वांगचुक नरेश के पदग्रहण समारोह के समापन से हुई। इस बीच मार्च 2008 में चुनाव आयोग ने वयस्क मताधिकार के आधार पर भूटानी संसद का पहला चुनाव सम्पन्न

कराया। द्रुक फ्यूसुना शोग्पा (Druk Phuensum Tshogpa) दल ने नेशनल असेंबली की 47 में से 45 स्थानों पर विजय पाई और P.D.P. (People's Democratic Parti) मात्र दो स्थानों पर विजयी रही। विजयी दल D.P.T. के दस सदस्यों की मन्त्रिपरिषद ने जिग्मी थिन्ले के नेतृत्व में शपथ ली। स्मरणीय है पहले पहले भूटान सरकार के मन्त्रिपरिषद में दो सदस्य नेपाली (ल्हात्शाम्पा) मूल के हैं। नई सरकार और प्रधानमन्त्री (Lyochhàn) जिग्मी थिन्ले से समस्त विश्व को काफी आशा है कि कटुता को भुलाकर भूटान के राजनैतिक जीवन में नया अध्याय जोड़ेंगे। फिलहाल तो नई सरकार वांगचुक वंश के सत्ताग्रहण की शताब्दी और पाँचवें द्रुक नरेश के सिंहासनारोहण के समारोह में व्यस्त है। निश्चित रूप से भूटान के लिए यह एक स्मरणीय ऐतिहासिक क्षण है।

पश्चिमी बुद्धिजीवी, पत्रकार, राजनेता और पर्यटक हिमालय, उसकी जनता, उनकी संस्कृति, उनके धर्म और परम्पराओं को एक अजूबा (Exotic) समझ आकर्षित होते हैं। नेपाल और सिक्किम में जनतन्त्र की स्थापना के बाद पश्चिमी पर्यटकों की दिलचस्पी उनमें कम होती जा रही है। दूसरी तरफ सभी विसंगतियों के विपरीत भूटानी नरेश, बौद्धधर्म, बौद्ध भिक्षु, बौद्ध विहार, पर्वत शृंखलाएँ, याक और पूरा वातावरण एक आश्चर्य की तरह आकर्षित करता है। तबाही, फटेहाली, पिछड़ेपन, गरीबी, अशिक्षा, बीमारी आदि से भरपूर दक्षिणी भूटान की तरफ बहुत ही कम पर्यटकों की नजर जाती है। नये महाराजा से नयी उम्मीदें हैं कि वे पुराने घाव पर मरहम लगाएँगे और परिस्थिति वश प्रवासी बनी अपनी प्रजा से नया संवाद आरम्भ करेंगे। सौभाग्य से जिग्मी थिन्ले के रूप में उन्हें एक अनुभवी और सुलझा हुआ प्रधानमन्त्री मिला है। आशा है नवयुवक भूटान नरेश नयी जनतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाएँगे और सम्पूर्ण भूटानी जनता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेंगे। इस प्रकार द्रुक धर्मतन्त्र, वांगचुक राजतन्त्र और नवजात जनतन्त्र एक पहेली न बनकर, एक नए सुखद प्रयोग के रूप में विश्व पटल पर आच्छादित होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Aris Michael, Bhutan : *The Early History of a Himalayan kingdom*, Vikas Publishing House, New Delhi, 1980.
2. Sinha AC, *Bhutan : Ethnic Identity and National Dilemma*, Reliance Publishing House, New Delhi, 2nd Edition, 1998
3. Sinha, AC, *Himalayan kingdom Butan : Tradition, Transition and Transformation*, Indus Publishing company, New Delhi, 2nd Edition, 2004